(कवित्त)

छवि को सदन मोद मंडित बदन-चंद
तृषित चखनि लाल, कब धौं दिखायहौ।
चटकीलो भेख करें मटकीली भाँति सों ही
मुरली अधर धरें लटकत आयहौ।
लोचन दुराय कछू मृदु मुसक्याय, नेह
भीनी बतियानि लड़काय बतरायहौ।
बिरह जरत जिय जानि, आनि प्रानप्यारे,
कृपानिधि, आनंद को घन बरसाय हौ ॥३॥

प्रकरण—प्रेमानुरक्ता गोपी की उक्ति है। पूर्वानुराग का वर्णन है। उसने श्रीकृष्ण का जो रूप देखा है वह उसके मन में बस गया है। पूर्वराग की यह अभिलाष दशा है। वह चाहती है कि श्रीकृष्ण मुरली बजाते आएँ और उन्हें वह देखे।

चूर्णिका—मोद = प्रसन्नता, प्रफुल्लता। चटकीलो = भड़कीली। भाँति = शैली। मटकीली० = चटक-मटकवाले ढंग से। लटकत = मस्ती से झूमते हुए। दुराय = हिलाकर, इधर-उधर मटकाकर। नेह० = प्रेम से सिक्त। लड़काय = ललककर, ललक उपजाकर। लड़कना ललकना है और लड़काना ललक उपजाना। आनि = आकर। कृपानिधि = कृपा के सागर।

तिलक—हे श्रीकृष्णलाल, आप कब पधारेंगे। सौंदर्य के आगार प्रसन्नता से अलंकृत अपना मुखचंद्र इन प्यासे नेत्रों (चकोरों) को कब दिखाएँगे। भड़कीला वेश धारण किए हुए चटक-मटक के रंग-ढंग से युक्त हो अधर पर बाँसुरी रखे मस्ती से झूमते हुए इधर कब आएँगे। केवल आपके दर्शनों और मुरली की तान की ध्वनि का ही अभिलाष नहीं है आपसे संलाप करने की इच्छा भी है। आप अपने नेत्र मटकाते हुए, कुछ सुकुमारतामय मुसकरा कर स्नेहसिक्त बातें करके मेरे मन में ललक उपजाकर मुझसे कब बातें करेंगे। केवल बातें ही नहीं आपकी वह कृपा मुझे कब प्राप्त होगी जब आप अपने आप मुझे विरह में जलती जानकर हे प्राणप्रिय करुणा-सागर, आनंद के बादल से (तोष तृप्ति की) वृष्टि करेंगे।

व्याख्या—छवि को सदन = छवि का आगार कहने में विशेषता यह है कि जहाँ जिसका घर होता है वहाँ वह निर्द्वंद्वता से स्वच्छंद विचरण करता है। वदन में छवि का विहार स्वच्छंद, परिपूर्ण, निर्बाध है। मोदमंडित = प्रसन्नता से मंडित करने का तात्पर्य यह कि प्रसन्नता सहज है, प्रकृतिस्थ है, निरंतर रहती है, कभी हटती नहीं। लाल = अत्यंत प्रिय को लाल कहते हैं। लाल शब्द से प्राणप्रियता की अभिव्यक्ति होती है। नेत्रों को दर्शनों से तृप्ति नहीं है, प्यास प्रेम की है—'दरसन तृपित न आजु लगि प्रेम-पियासे नैन।'—तुलसी। लाल चौं = इससे अनिश्चय प्रकट होता है, आतुरता भी व्यक्त होती है। यह ज्ञान नहीं है कि श्रीकृष्ण कब आनेवाले हैं। निरंतर देखने की इच्छा होने से थोड़े समय का वियोग भी सहन नहीं है इसलिए उत्कट अभिलाष प्रकट होता है। चटकीलो० = श्रीकृष्ण का भड़कीला वेश, उनकी साजसज्जा भी उसके लिए आकर्षक है। उनकी मुद्रा भी आकर्षक है और उनका वेणुवादन भी आकर्षक है। पहले दो का संबंध नेत्रों से है, फिर भी पहली पंक्ति में दर्शन का अभिलाष है केवल नेत्र-विषय से उसकी संबद्धता है। इस चरण में नेत्र-विषय के साथ श्रुति-विषय का संबंध है। पर प्रधानता श्रुति-विषय की है। लोचन० = लोचनों के चांचल्य का अन्वय दृश्य प्रधान होने से नेत्र का विषय है। 'कछु मृदु मुसक्याय' में भी नेत्र-विषय का अन्वय है। किंतु वार्ता में श्रुति-विषय का अन्वय है। किंतु वार्ता में श्रुति की अपेक्षा मानसतृप्ति अधिक है। मुरली की तान में कर्ण की तृप्ति प्रमुख है। यहाँ मानसतृप्ति प्रमुख है। उत्तरोत्तर उत्कर्ष और इंद्रियों से योग का तारतम्य है। कृपा = कृपा और अनुग्रह समानार्थी नहीं हैं, इनमें अंतर है। कृपा अपनी ओर से होती है, कोई दया का पात्र है तो वह दयालु से प्रार्थना भी कर सकता है और नहीं भी कर सकता या करने पा सकता। जो अनुकूलता अपने आप किसी के प्रति की जाती है वह कृपा है। किसी के कहने पर जो अनुकूलता दिखाई जाती है वह अनुग्रह है। अनुग्रह में अनु का अर्थ पीछे, तदनंतर है, याचना करने पर अनुकूलता। अनुकंपा में किसी को कष्टानुभूति के प्रति उसी प्रकार का अनुभव करने की स्थिति है। किसी के कष्टजन्य अनुभव (कंपन) के प्रति अपनी तदनुरूप अनुभूति (कंपन) की अभिव्यक्ति करना, समानुभूति व्यक्त करना अनुकंपा है। श्रीकृष्ण स्वयम्

कष्ट को जानकर उसे दूर करने का प्रयत्न करेंगे इसलिए 'कृपा' शब्द का व्यवहार किया गया है। 'जिय जानि'-का व्यवहार इसी से है। इन कवियों की पद्धति में दूत सामान्यतया नहीं होते, इसलिए प्रिय स्वतः कृपा करे तभी इनका कार्य संपन्न हो सकता है। निधि = यहाँ 'निधि' का 'समुद्र' ही अर्थ बैठता है। सागर से ही बादल उमड़ते हैं। प्रान = प्राणप्यारे का एक अर्थ बादल के साहचर्य से प्राण (पवन) जिसे प्रिय हैं भी हो सकता है। पवन की प्रियता से बादल का उड़कर आना ठीक ही है। नेहमीनी = नेह का अर्थ तैल भी हो सकता है तब 'बतिया' का अर्थ 'बत्ती' हो जाएगा।

विशेष—दुराय, मुसक्यानि, लड़काय, बतराय पर रुकावट से अंत्यानुप्रास द्वारा तबले के बोल की स्थिति का अनुभव होता है। इनकी रचना में प्रायः कवित्तों में ऐसा अत्यधिक पाया जाता है।

वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै
लड़कीली दानि आनि उर मैं अरति है।
वहै गति लैन औ बजावनि ललित बैन,
वहै हँसि दैन, हियरा तें न टरति है।
वहै चतुराई सों चितई चाहिवे की छबि,
वहै छैलताई न छिनक बिसरति है।
आनँदनिधान प्रानप्रीतम सुजानजू की,
सुधि सब भाँतिन सों बेसुधि करती है॥४॥

प्रकरण—गोपी का विरह वर्णित है; स्मृति दशा है। प्रिय को उसने संयोगावस्था में जिन-जिन मुद्राओं में देखा है वे उसी में अंतःकरण में स्थित हैं। मुसकराना, बातें करना, ललकवाली टेव, मस्ती से चलना, वेणुवादन, हँसना, चातुर्यमयी आँखों से देखना, छैलापन उसकी स्मृति के विषय हैं।

चूर्णिका—लड़कीलो = ललकवाली। अरति० = अड़ती है, अवस्थित हो जाती है। गति० = (मस्ती) से चलना। बन = वेणु, बाँसुरी। चितई = चैतन्य की हुई, जगाई हुई। चाहिवे की = देखने की। छैलताई = रँगीलापन। निधान = कोश, खजाना। सुधि = स्मृति। बेसुधि = बेहोशी, विस्मृति।

तिलक—प्राणप्रिय सुजान (श्रीकृष्णजी) की सुध (स्मृति) सब प्रकार से बेसुध (विस्मृति) उत्पन्न करती है [या बेसुध बेहोश करती रहती है]

उनका वह मुसकराना, वह कोमलतायुक्त बातें करना, उनकी वह ललकवाली टेव आकर हृदय में अड़ती रहती है। उनका वह हावभावमय चलना, वह सुंदर वेणुवादन और हँसना हृदय से टलता ही नहीं। चतुराई से प्रेरित उनकी वह मेरी ओर देखने की छटा तथा वह छैलापन क्षणभर भी भूलता नहीं, निरंतर ध्यान में चढ़ा रहता है।

व्याख्या—इसमें भी तारतम्य है मुसकराना और फिर कोमल-कोमल बातें करना। पहले वे मुसकराते हैं, फिर बातें करने लगते हैं। बातें करते हुए वे जिस प्रकार की मुद्रा दिखाते हैं वह ललक को अभिव्यक्ति करती रहती है। ये परिस्थितियाँ हृदय में पहुँचकर ऐसी अड़ती हैं कि किसी प्रकार हृदय से बाहर नहीं होतीं। अड़नेवाली ये मुद्राएँ किसी प्रकार बाहर नहीं होतीं, पर हृदय में इधर-उधर हिलती-डुलती रहती हैं। पर उनकी वेणुवादन की मुद्रा और तदनंतर मुसकराना तो हृदय में भी ऐसा जमा है कि वहाँ भी हिलता डुलता नहीं। ये दोनों हृदय में चाहे अड़े हों, चाहे जमे हों, पर निरंतर अपनी ओर आकृष्ट नहीं करते, समय-समय पर उनकी ओर ध्यान जाता है। किंतु उनकी जो चातुर्यभरी अवलोकन की छटा है, जिसमें छैलापन व्यक्त होता है, वह तो क्षणभर के लिए भी भुलाई नहीं जा सकती। परिणाम यह है कि ध्यान जब उन्हीं में रहता है तो अपनी सुध-बुध किस प्रकार हो। अपनी सुध कभी आती ही नहीं। सब भाँतिन = अंतःकरण चतुर्विध माना जाता है—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार। 'उर' शब्द चित्त के लिए, 'हियरा' मन के लिए है, न भूलने में 'बुद्धि' है। इन तीनों के अन्यत्र संलग्न हो जाने से अहंकार-अहंवृत्ति का पता ही नहीं लगता। इस प्रकार अंतःकरण निर्वृत्ति हो जाता है, वह तन्मय है। यह तन्मयता की स्थिति है।

विशेष—(१) इसमें भी अंत्यानुप्रास के कारण तबले की ठनक सुन पड़ती है। (२) सुजान शब्द श्रीकृष्ण और राधा दोनों के लिए प्रयुक्त होता है। इनकी प्रेयसी का नाम भी सुजान था। सुजान से वियुक्त होने पर कहते हैं कि उसके नाम का अंकन अपनी रचना में बराबर करते रहे। कवित्त सवैयों में प्रायः सुजान, जान, जानराय नाम आया है। पदों में यही नियम है। जब ये पूरे भक्त हो गए तब इन्होंने इस लौकिक आधार का परित्याग कर दिया, यह अनुमान करना पड़ता है।

अलंकार—'सुधि' 'बेसुधि' में विरोध।

भाषा—'हियरा' शब्द आकारांत ही रहता है। केवल सप्तमी में 'हियरे' रूप प्रयुक्त होता है। यही स्थिति 'जियरा' की भी है। 'ड़ा' प्रत्यय वाले शब्दों की ऐसी ही स्थिति ब्रजी में जान पड़ती है।

जासों प्रीति ताहि निठुराई सों निपट नेह,
कैसे करि जिय की जरनि सो जताइये।
महा निरदई दई, कैसें कै जिवाऊँ जीव,
वेदन की बढ़वारि कहाँ लौं दुराइये।
दुख को बखान करिबे कौं रसना कैं होति,
ऐपै कहूँ वाको मुख देखन न पाइये।
रैन दिन चैन को न लेस कहूँ पैये भाग,
आपने ही ऐसे दोष काहि धौं लगाइये ॥५॥

प्रकरण—इसमें प्रिय के विषम प्रेम की चर्चा है। एक ओर प्रिय की उदासीनता और दूसरी ओर प्रेमी की एकनिष्ठता का निरूपण है।

चूर्णिका—निपट = अत्यधिक। कैसे = किस प्रकार। जताइयै = जतलाऊँ, बताऊँ। दई = दैव। वेदन = वेदना, पीड़ा। बढ़वारि = बढ़ती, अधिकता। दुराइयै = छिपाऊँ। बखान = कथन। कैं = यदि, कहीं। ऐपै = इतने पर भी। भाग = भाग्य। काहि = किसे। धौं = न जाने।

तिलक—जिस प्रिय से मैंने प्रीति की, उसने मुझसे तो बदले में प्रेम नहीं किया, उलटे उसने निष्ठुरता से अत्यंत प्रेम कर लिया। इस प्रकार जो जलन हृदय में होती है उसे मैं किस प्रकार जताऊँ। हे दैव, वह निर्दय ही नहीं महा निर्दय है, इसलिए अपने जी को कैसे जिलाऊँ। महानिर्दय (हिंसक) भला कैसे जीने देगा। यदि यह कहा जाय कि वेदना को छिपा रखो तो वह तो निरंतर बढ़ती ही रहती है। बढ़कर शरीररूपी घट से बाहर हो जाना चाहती है, इसलिए उसे छिपाये रखना भी संभव प्रतीत नहीं होता। छिपाने का भरसक प्रयास किया गया; पर छिपाने से छिपे तब न! मेरे वश की बात नहीं रह गई, वह इतनी अधिक है कि आपसे आप दूसरों को प्रकट हो जाना चाहती है। यदि कोई कहे कि क्या वेदना है कहकर बताओ तो उसका कथन कैसे किया जाय! वेदना का आधिक्य इतना अधिक है कि जिह्वा ने अपना

कार्य करना ही छोड़ दिया है, कहूँ भी तो किस जीभ से कहूँ ! यदि प्रिय के दर्शन हो जाते तो तृप्ति से किसी प्रकार कुछ काम बनता ! पर उस प्रिय का मुख देखने पाऊँ तब न ! उनके दर्शन तो मिलते ही नहीं। फल यह है कि रात-दिन चैन का लेशमात्र भी नहीं मिलता। कुछ कहना-सुनना तभी हो सकता है जब चित्त प्रकृतिस्थ हो, यहाँ प्रकृतिस्थ होने का अवसर ही नहीं मिलता। इसमें क्या किसी को दोष दूँ। प्रिय को दोष दिया वह भी व्यर्थ ही दिया। अपने भाग्य का ही दोष है। मेरे हिस्से में इस प्रकार वेदना सहना ही बदा है।

व्याख्या—निठुराई = निष्ठुरता सपत्नी रूप में कल्पित है। प्रिय का उससे प्रेम नहीं, परम प्रेम है। प्रीति और नेह शब्द पर्यायवाची रखकर दोषमार्जन ही नहीं किया गया प्रत्युत नेह-शब्द से परपक्ष में गौरव भी दिखाया गया। यही क्यों, नेह वहाँ हुआ और प्रचंड ज्वाला प्रेमिका के हृदय में उठी (असंगति, विरोधमूलक प्रवृत्ति)। 'कैसें करि' से यह भी व्यंजित किया कि लोकसामान्य प्रवृत्ति नहीं है, इसलिए क्या कहा जाय। 'जेहि कर जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलै न कछु संदेहू।' यहाँ घटित ही नहीं होता। महानिरदई = दैव से, दई से निर + दई क्या महा निर + दई की बात कैसे कही जाय। अलोकसामान्यवृत्ति होने से वह प्रिय महा निरदई कहा गया। महानिरदई में निर्दयता तो है ही वह दैव के शासन से भी परे है, निर्दैव भी है। वेदन = वेदना में पीड़ा तो है ही। 'वेदन' में ज्ञान का अर्थ भी है (विद् ज्ञाने) इस ज्ञान के दरबार मन में टकराने से पीड़ा बढ़ती ही जाती है। वह छिपाए छिपती नहीं। रसना = जीभ ने अपना काम करना ही छोड़ दिया है। मन के अत्यधिक प्रभावित होने से सारी इंद्रियाँ शिथिल हैं। रसना (रसवाली) भला इस नीरस वेदनामयी स्थिति में क्या कहे। कैं = 'यदि कहीं' के अतिरिक्त 'कई' (कैं = कई) अर्थ भी ले सकते हैं। वह वेदना एक जीभ से क्या कही जा सकती है ! ऐपै = ब्रजी का शब्द। पूरब में भी ऐसा प्रयोग चलता है एपै, एप्पर, एपर आदि। इतने पर भी मुख तक दिखाई नहीं पड़ता। केवल दर्शन से ही स्थिति सुधर सकती थी, सो भी नहीं मिलता। प्रिय अनुकूल न भी होता, पर दिखाई तो पड़ता। पर वह दिखलाता ही नहीं। दर्शन = लालसा

की अभिव्यक्ति है। इतने से ही पूर्ण तृप्ति हो सकती थी। दोष = प्रेम-साधना की रूढ़ि है। परम प्रेमी अपने को ही दोष देता है प्रिय या अन्य किसी को दोष नहीं देता।

व्याकरण—जताइयै = इसका अर्थ सामान्यतया भावे माना जाता है, जताया जाय, डराया जाय आदि। पर अपभ्रंश में ऐसे प्रयोग सब लकारों, पुरुषों में आते हैं मिलाइए हेमचंद्राचार्य के सूत्र (३/१७७) से।